THE BAPS SWAMINARAYAN RESEARCH

JOURNAL

बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण शोधपत्रिका

Volume 1 - Issue 1

April 2022

मन्दिर-स्थापत्य की शास्त्रीय परम्परा में शिखर: उत्पत्ति, विकास तथा दार्शनिक मर्म

Aksharvatsaldas Swami
Editor, "Svāmināràyaṇa Prakāśa"

Disclaimer: Statements and opinions in the articles and reviews published within the BAPS Swaminarayan Research Journal are those of the respective authors and contributors and not of the Journal or the BAPS Swaminarayan Research Institute, New Delhi. Neither the Journal nor the BAPS Swaminarayan Research Institute makes any representation, expressed or implied, in respect of the accuracy of the material published within this journal and do not accept any legal responsibility or liability for any inaccuracies, errors, or omissions that may have been made.

e-ISSN: 3048-9741
https://research.baps.org/journal

pp. 75-98

मन्दिर-स्थापत्य की शास्त्रीय परम्परा में शिखर: उत्पत्ति, विकास तथा दार्शनिक मर्म

AKSHARVATSALDAS SWAMI
Editor, "Svāmināryaṇa Prakāśa"

सारांश (ABSTRACT)

विश्व के कलाक्षेत्र में प्राचीन भारतीय वास्तुकला अपना एक अनूठा स्थान आरक्षित रखती है. ऋग्वेद के समय से भारत में लोकजीवन एवं धर्म के साथ वास्तुकला का संबंध अटूट रहा है, किन्तु मन्दिर-प्रासाद के उद्‌भव के साथ वह संबंध विशेष रूप से उजागर हुआ दिखाई देता है.

विश्व के धार्मिक स्थापत्यों (Theistic architecture) की श्रेणी में प्राचीन भारतीय मन्दिर-प्रासाद की अपनी विशिष्ठ पहचान एवं अप्रतिम स्थान है. वास्तुकला के वैश्विक क्षेत्र में मन्दिर की पहचान (Identity) को बनाने में प्रासाद पर स्थित शिखर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है. पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण भारत में शिखर की अपनी-अपनी परम्परा रही है. जिसमें उत्तर, पश्चिम व मध्य भारत में विकसित नागर शैली के मन्दिर-प्रासाद अपने वक्राकार रेखाशिखर के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं.

यद्यपि शिखरयुक्त मन्दिरों के प्रकार निर्धारण करने में विद्वानों के मत अलग-अलग हों, किन्तु इस बात पर सभी एक मत हैं कि इसके पार्श्वभू में एक दार्शनिक चिंतन है, जिसके कारण आजपर्यंत धार्मिक इमारतों के इतिहास में मन्दिर ने अपना स्थान अनुपम बना रखा है.

यह शोधपत्र मन्दिर-प्रासाद की उत्पत्ति से लेकर शिखर की रचना के इतिहास पर दृष्टि करते हुए, अंत में दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है. युगों से भारतीय दार्शनिक परम्परा में अक्षरब्रह्म का विषय चर्चा के केन्द्र में रहा है, वही अक्षरब्रह्म मन्दिर-प्रासाद के रूप में परब्रह्म को धारण करता है, वह इस शोधपत्र की फलश्रुति है.

इस प्रकार आध्यात्मिकता एवं प्राचीन भारतीय वास्तुकला का अटूट संबंध यहाँ स्पष्ट किया गया है.

Keywords: Indian architecture; vāstuśāstra; meaning in architecture; mandir; history of Indian architecture; Nagara style; Dravidian style; śikhara

पूर्व भूमिका

विश्व की प्रत्येक संस्कृति में आवासों से लेकर, भव्य स्मारकों तथा महलों तक की इमारतों की एक संरक्षित विरासत है; परन्तु इमारतों की उस विशाल श्रेणी में धार्मिक इमारतों की एक अलग पहचान है. कारण यह है कि प्रत्येक संस्कृति और प्रत्येक सभ्यता के पास उसकी अपनी महत्त्वपूर्ण धार्मिक मान्यताएँ हैं. वे मान्यताएँ धार्मिक स्थापत्य (Theistic or sacred architecture) में एक या दूसरे स्वरूप में प्रतिबिम्बित होती हैं. धार्मिक स्थापत्यों के जगत में, विशिष्ट स्थापत्य एवं दार्शनिक विचारधारा के कारण मन्दिर अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान आरक्षित रखता है.

हिन्दू मन्दिर-स्थापत्य का विश्लेषण करते हुए स्टेला क्रेमरिश ने यथार्थ लिखा है –

> 'The purpose of a Hindu temple is shown by its form. It is the concrete symbol of reintegration and coheres with the rhythm of the thought imaged in its carvings and laid out in its proportions. Their perfection is celebration of all the rites enacted during the building of the temple from the ground to its pinnacle. Nothing that is seen on the temple is left unsaid in the verbal tradition nor is any of the detail arbitrary or superfluous. Each has a definite place and is part of the whole.'[1]

हिन्दू मन्दिर की उस विशिष्ट पहचान को मुखरित करने में उसके कई अंगों-प्रत्यंगों का योगदान रहा है, किन्तु उनमें शिखर (Superstructure) का सबसे बड़ा योगदान रहा है. मन्दिर चाहे 8 वीं शताब्दी में निर्मित महाबलिपुरम् का हो, या 21 वीं शताब्दी में निर्मित उत्तर अमरिका में लोस एन्जलस का बी.ए.पी.एस. मन्दिर (Fig. 1.0) हो, पिछली अनेक शताब्दियों से शिखर के कारण मन्दिर का एक अनुपम स्वरूप पल्लवित हुआ है. उत्तर तथा दक्षिण भारत की मन्दिर-स्थापत्य की परम्परा में विविध आकृतियों के साथ 'शिखर' को अपनी-अपनी व्याख्याओं में व्याख्यायित किया गया है. पुरातत्त्वीय तथा शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट देखा जा सकता है कि गत दो सहस्राब्दियों में मन्दिर-स्थापत्य के क्रमिक विकास की प्रक्रिया में शिखर का विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है. आइए, 8वीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के दौरान रचे गए वास्तुशास्त्रों का अवगाहन करते हुए पर एक दृष्टि डालते हुए, शिखर की उस विकास यात्रा पर एक दृष्टि डालें...

वास्तुशास्त्रों में मन्दिर के प्रकारों में शिखर का प्रभुत्व

भारतीय वास्तुशास्त्र विश्व की एक विरल बौद्धिक संपदा है, जिसके आधार पर विश्व मे अनेक अद्वितीय स्मारकों की रचना की गई है. भारतीय मन्दिर-स्थापत्य के उन शास्त्रों का परिचय देते हुए जेम्स बर्जेस तथा हेनरी कज़ीन्स लिखते हैं:

> 'The old shilpa texts are well worth study in order that we may intelligently and correctly understand the old methods and the structural remains of ancient works. They have a place in the history of Indian architecture as Vitruvius has in Western art.'[2]

आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी का समय भारत के कला-शिल्प इतिहास में एक

1. Kramrisch, Stella, 1976, Preface, *The Hindu Temple*, Motilal Banarasidas, Delhi.
2. Burgess, James and Cousens, Henry, 1903, *Architectural Antiquities of North Gujarat*, Routledge and



(Fig. 1.0) 21 वीं शताब्दी में पूज्य प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा निर्मित नागर शैली का पंच शिखरयुक्त बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण मन्दिर, लोस एन्जलस, यु.एस.ए.

महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है; क्योंकि दो सहस्राब्दियों के इस संगमकाल में विश्व ने भारतीय मन्दिर-स्थापत्य के विकास की चरमसीमा देखी है, जिसमें उत्तर भारत की नागर शैली की विभिन्न शाखाएँ अधिक विकसित हुई थीं, उसी प्रकार से पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में भी मन्दिर-स्थापत्य का विकास हुआ था. मन्दिर-वास्तु के उस क्रमिक विकास के साथ-साथ वास्तुशास्त्र भी उत्तरोत्तर अधिक परिपक्व बनते रहे. गर्ग (गर्गसंहिता), कश्यप (कश्यपसंहिता, कश्यप शिल्प शास्त्र), पराशर (विश्वकर्मा प्रकाश), मनु (मत्स्यपुराण), मार्कण्डेय (विष्णुधमोत्तर) तथा अन्य ऋषियों के प्राचीन ग्रन्थों के स्थान पर अपनी एक नई पहचान खड़ी करनेवाले शास्त्र उसी काल में रचे गए जिनमें पुराणों तथा आगम शास्त्रों के अतिरिक्त समरांगणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, मयमतम्, मानसार, शिल्परत्न आदि सहित कुल मिलाकर 211 उपलब्ध संस्कृत शास्त्रों की विस्तृत सूचि प्रसन्नकुमार आचार्य ने प्रस्तुत की है.[3] इस शास्त्रीय परम्परा पर दृष्टि करते हुए अनुमान किया जा सकता है कि वास्तु शास्त्रों के साथ-साथ मन्दिर-स्थापत्य में भी क्रमिक अथवा समान्तर विकास की प्रक्रिया कुछ शताब्दियों तक चलती रही होगी. फल-स्वरूप मन्दिरों के विविध प्रकारों का उद्‌भव हुआ, जिनका इन शास्त्रों ने विवरणपूर्वक श्रेणीविभाग किया है. जैसे –

11वीं शताब्दी में पश्चिम भारतीय वास्तु ग्रन्थ 'अपराजितपृच्छा'[4] में भारतीय मन्दिरों के 14 प्रकारों का वर्णन प्राप्त है :

Kegan Paul, p. 21-28.

3. Acharya, Prasanna Kumar, 1927, *An Encyclopaedia of Hindu Architecture*, The Oxford University Press, London, Appendix 1.

4. द्राविडा मिश्रका: ख्याता विमाना भूमिजास्तथा सान्धाराश्च वराटश्च लतिनाश्चैवकामदा: ॥
वलभ्य: फांसनाकारा: सिंहालोकनदारुजा: विमानं नागरच्छन्दे कुर्याद् विमानपुष्पकम् ॥
- AparajitPruchha, 103/2-3

(1) नागर (2) द्राविड (3) लतिन (4) भूमिज (5) वराट (6) विमान (7) मिश्रक (8) सांधार (9) विमान नागर (10) विमान पुष्पक (11) वलभी (12) फांसनाकार अथवा नपुंसक (13) सिंहावलोकन तथा (14) रथारूह

इन सभी जातियों के निर्णय हेतु कुछ शास्त्रों ने उत्तर-दक्षिण जैसे भौगोलिक विभागों (देशानुसार वर्तन) तथा तल-प्रारूप (Plan) का उपयोग किया है. दक्षिण भारतीय वास्तुशास्त्र कामिकागम[5] मन्दिर-स्थापत्य का विभागीकरण प्रांत (Regions) के आधार पर करता है: (1) नागर (2) वेसर (3) द्राविड (4) वराट (5) कलिंग (6) सार्वदेशिक.

नागरं द्राविडं चैव वेसरं सार्वदेशिकम्।
कालिंगं च वाराटं च, षड्विधाम् त्रिहा कीर्तितम्॥

पूर्व भारतीय वास्तुशास्त्र 'लक्षणसमुच्चय'[6] भी मन्दिरों के प्रकारों का वर्णन प्रांतीय (Reginal) दृष्टि से ही करता है: (1) कलिंग (2) नागर (3) लाट (4) वराट (5) द्राविड (6) गौड

कालिंगा नागरा लाटा वराटा द्राविडास्तथा।
गौडा इति च षडैवते प्रासादाश्च सरेखका: ॥[7]

लेकिन प्रांतीय दृष्टि से अथवा प्लान या किसी भी दृष्टि से भारतीय मन्दिर के विभिन्न प्रकारों के वर्णन होने के बावजूद मन्दिरों के श्रेणीविभाग के मुख्य आधार के रूप में शिखर की ही मुख्य भूमिका रही है.

जैसे लक्षणसमुच्चय[8] ग्रंथ प्रांतीय प्रकारों का वर्णन करने के बाद इस प्रकार विशेष स्पष्टता करता है :

लतिना: कुटिनाश्चैव शेखरी चक्रिणास्तथा।
सान्धारा भूमिजाश्चपि प्रासादा: षट्स्मृता इमे।
धाम्ना वलभी स्त्रीवनिति(कृच्छा?) फांसना-नपुंसकम्॥

अर्थात् लतिन, कुटिन, शेखरी, चक्रिण, सांधार, भूमिज, वलभी, फांसना आदि प्रकार के शिखर की आकृति को लक्ष्य में रखकर निश्चित किये गये हैं.

शिखरों की आकृति के आधार पर मन्दिरों के प्रकार प्रस्तुत करते हुए सुप्रभेदागम लिखता है -

प्रोक्तं जातिभेदमत: शृणु॥
नागरं द्राविडं चैव के(वे)सरं च त्रिधास्मृतम्। कण्ठादारभ्य वृत्तं यत्तत्के(वे)सरमिति स्मृतम्॥
ग्रीवमारभ्य चाष्टाश्रं विमानं द्राविडाख्यकम्। सर्वं वै चतुरस्रं यत्प्रासादं नागरं त्विदम्॥[9]

यदि मन्दिर की शिखर-रचना में ग्रीवा से ऊपर गोलाकार हो, तो उसकी जाति वेसर है, ग्रीवा से यदि वह अष्टकोण में हो, तो उसकी द्राविड जाति है. यदि चतुष्कोण हो, तो उसकी जाति नागर है.

इस प्रकार, वास्तुशास्त्रों के रचयिता विद्वान स्थपतियों ने सुपरस्ट्रक्चर अर्थात् शिखर की आकृति

5. Kamikagama, 49/2-3.
6. Author: Virochan.
7. Lakshansamucchaya: 27/28-30.
8. ibid.
9. Suprabhedagama: 30/40-42.

के आधार पर मन्दिरों की जाति निश्चित की है. मन्दिर-स्थापत्य में जातिनिर्णय के लिए शिखर का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है. इसीलिए शास्त्रकारों ने लिखा है:

> शिखरस्य भेदेन तु सर्वेषां भेदमुद्दिशत् ॥[10]

अर्थात्, शिखरों के भेदविभाग से ही मन्दिरों के प्रकारों को जानना चाहिए.

मन्दिर-प्रासाद में शिखर का महत्त्व होते हुए भी, उसकी उत्पत्ति के इतिहास में कई आधारभूत प्रश्न चर्चा करने योग्य हैं. जिसमें प्रथम प्रश्न यही उठता है कि क्या मन्दिर-प्रासाद में शिखर की रचना आरंभ से ही थी या समयांतराल के पश्चात् जुड़ा हुआ मन्दिर का वह उपांग है ?

इस विषय के विविध मतमतान्तरों में से कुछैक पर दृष्टि डालकर हम मन्दिर-वास्तु एवं शिखर के साथ जुड़ी हुई दार्शनिक विचारधाराओं का पृथक्करण करेंगे.

शिखर-विहीन मन्दिर-प्रासाद

विद्वानों के एक निरीक्षण के अनुसार, छठवीं शताब्दी तक मन्दिर की अनोखी पहचान स्वरूप शिखर प्रासाद पर रचे नहीं जाते थे. कुछ पुरातत्त्वीय अवशेष आज भी प्राप्य हैं, जहाँ शिखरविहीन प्रासाद हैं, अर्थात् गर्भगृह के ऊपर समतल छत (Flat roof) है. विशेष रूप से उत्तर एवं मध्य भारत में ऐसी समतल छत वाली कुछ रचनाएँ अधिकतर दिखाई देती हैं.

विशेष करके गुप्तकालीन मन्दिरों की श्रेणी में यह समतल छतयुक्त (Flat-roofed) मन्दिर प्रासाद विशेष रूप से दिखाई देता है.

ऐसे समतल छत वाले मन्दिर-स्थापत्यों के उदाहरणों में मध्यप्रदेश के नचना कुथरा गाँव (अजयगढ के निकट) का पार्वती मन्दिर ध्यानाकर्षक है. (Fig. 2.0) इस मन्दिर का समय निर्धारण करते हुए कनिंगहाम[11] लिखते हैं:

> 'It is undoubtedly of the Gupta period, it may perhaps be referred to about A.D. 400 with some degree of certainty.'

पुरातत्त्वविद आर. डी. बेनरजी[12] भी इस मन्दिर को गुप्तयुग के प्रारंभ का अर्थात् सन 400-450 का समय निर्धारित करते हुए लिखते हैं:

> 'We can safely deduce that the flat-roofed temples of Bhumra and Nachna Kuthara belong to the Early Gupta period, which ended in the middle of the 6th century A.D.'

गुप्तयुग के प्रारंभिक वर्षों में रचित उर्पर्यक्त नचना कुथरा के इस मन्दिर-प्रासाद में गर्भगृह पर एक समतल छतयुक्त खंड (Chamber) की रचना की गई है. इस समतल छत के कारण यह स्पष्ट खयाल आता है कि यहाँ पूर्वकाल में कभी भी शिखर नहीं था, न ही उसके रचयिता स्थपति का यहाँ शिखर रचने का कोई आशय था. कुछ विद्वानों के मतानुसार संभवत: उस युग में मन्दिर-स्थापत्य पर शिखर के निर्माण का आरंभ ही नहीं हुआ था.

---

10. Ishanshivagudevapaddhati: 3/28/42.
11. Cunningham, Alexander, 1885, *Archaeological Survey of India*, Office of the Superintendent of Government, Calcutta, p. 98.
12. Banerji, R.D., 1920, *Progress Report of the Archaeological Survey of India*, *Western Circle*, p. 137.

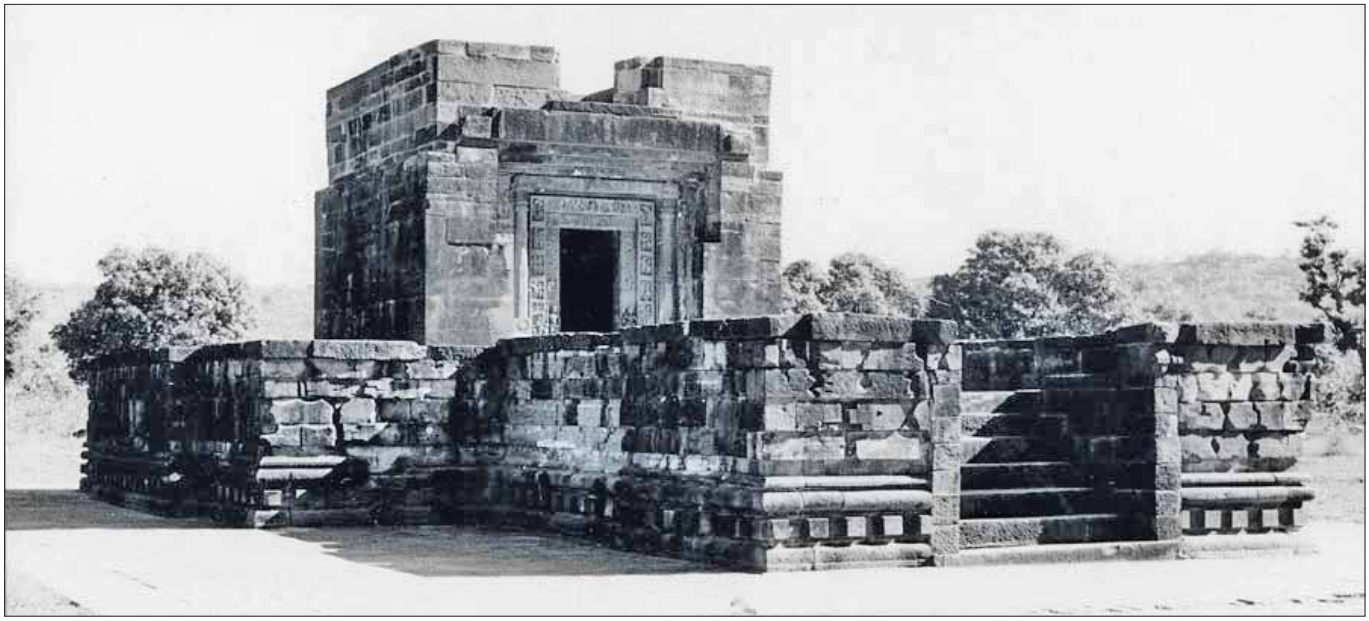

(Fig. 2.0) नचना कुथरा का शिखरविहीन समतल छतयुक्त पार्वती मन्दिर, गुप्तयुग, 4-5 वीं शताब्दी

नचना कुथरा जैसा एक अन्य उदाहरण है – भुमरा. 1920 में खुदाई करने पर प्राप्त हुआ भुमरा का शिव मन्दिर, नचना कुथरा के मन्दिर से भी प्राचीन होने का प्रमाण मिला है. इस मन्दिर के चौकोर गर्भगृह के अग्रभाग में मंडप की रचना की गई है. लाल रंग के बलुआ पत्थर (Sandstone) से बने हुए इस मन्दिर पर भी लम्बा समतल छत है. यहाँ पर ऊपर से ढँके हुए प्रदक्षिणा पथ की रचना की गई है, जिसे जालियों से (Stone windows with pierced screens) प्रकाशित किया गया है. मन्दिर का प्रवेशद्वार नदी-देवियों की मूर्तियों से अलंकृत है.

मध्य युग में रचे गए ऐसे समतल छतवाले (Dolmen type, Flat-roofed) मन्दिर के अन्य कुछ उदाहरण भी दृष्टव्य हैं. उनमें झांसी के समीप स्थित चंदपुर, दुदही, लाधौरा (Chandpur, Dudahi, Ladhaura) आदि उदाहरण दिए जा सकते हैं. कुछ ऐसे छोटे समतल छत युक्त मन्दिर भी देखने को मिलते हैं, जिन्हें सीधी-सादी दीवारों के साथ एक गर्भगृह, एक संकरा बरामदा और कई बार स्तंभयुक्त मंडप भी होते हैं. सांची में 17 क्रमांक का मन्दिर उसका एक सुंदर उदाहरण है. (Fig. 4.0) यहाँ स्तंभयुक्त बरामदे की रचना एक विशेष प्रकार के विकास को प्रदर्शित करता है. स्तंभशीर्ष (Capital) अधिक भारी दिखाई देता है. यही रचना इरान, गढवा तथा उदयगिर में भी देखने को मिलती है.

इसके बिलकुल समरूप आकृति (Identical design) तिगवा में समतल छत युक्त मन्दिर में देखने को मिलती है, जिसमें छत के पत्थर-पट एक-दूसरे के खांचे में अतिच्छादन (Overlap) करके रखे गये हैं. (Fig. 5.0) ललितपुर जिले का गोन्द (Gond) मन्दिर भी ऐसे समतल छत युक्त मन्दिर का एक सुंदर उदाहरण है.

भितारगाँव का ईंटों से बना हुआ मन्दिर एक उल्लेखनीय उदाहरण है, जिसमें समचोरस तलप्रारूप है, उसके दो कारनीस (Cornice) तथा खुदाई-नक्काशी की हुई ईंटों की झालर (Frills) आकर्षक है. दो कारनीस के ऊपर चैत्य-गोख (Niches) के क्षैतिज (Horizontal) स्तर से निर्मित पिरामिड आकार की शिखर जैसी रचना दिखाई देती है. हिन्दू पौराणिक प्रसंगकथाओं के दृश्यों की पकाई गई मिट्टी (Terracotta) की कलात्मक रचनाओं से गर्भगृह की दीवारें अलंकृत हैं. इसी प्रकार के लक्षणों से युक्त, ईंटों तथा पत्थरों से बनाई गई और थोडी अधिक विकसित रचना बाकुरा



(Fig. 3.0) 5 वीं शताब्दी में निर्मित लाडखान (ऐहोल, कर्णाटक) का शिवमन्दिर, जो शिखरविहीन समतल छत मन्दिर-प्रासाद का प्रसिद्ध उदाहरण है.

के पास सोना, तपन एवं चीनपुर में दृष्टव्य है. इसी प्रकार के अन्य उदाहरण बंगाल के मनभूम तथा दलमी में प्राप्त हुए हैं. लेकिन इसका अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि ये शिखर-रचनाएँ बाद में प्रयुक्त की गई हैं.

समतल छत युक्त मन्दिर का सबसे अधिक रुचिकर उदाहरण है, अहियोल स्थित लाडखान मन्दिर.(Fig. 3.0) सन् 450 AD का यह मन्दिर बहुत ही नीचा और समतलीय है. पत्थर के स्लेब से बनी हुई उसकी दीवारें तथा स्तंभों पर मदल - स्तंभशीर्ष (Bracket-Capitals) हैं. गोलाकार धारवाला छज्जा यथोचित अंतर पर लगे हुए चैत्य कमान से अलंकृत है. प्रवेशचौकी के स्तंभों पर नदी-देवियों की मूर्तियाँ हैं, जो गुप्तकाल की विलक्षणता (Characteristic) मानी जाती हैं. छत पर पत्थर के स्लेब से बना हुआ एक छोटा सा गर्भगृह है, जिसे प्राग्रीव मंडप भी कहते हैं और यह मन्दिर सूर्यदेवता का एक स्वतंत्र मन्दिर है. मन्दिर की दीवारों में उभड़ी हुई नक्काशी (Relief) के साथ झरोखे बने हुए हैं. खूबसूरत आकृतियुक्त जालियों से मन्दिर की दीवारें शोभायमान लगती हैं. यह और इसके जैसे अन्य तीन मन्दिर भी अहियोल में हैं, जिनमें पहले कभी भी शिखर नहीं था, लेकिन बाद में वे शिखरयुक्त हो गए.

छठवीं शताब्दी में निर्मित अहियोल का दुर्गा मन्दिर भी गुप्तयुग अथवा चालुक्य युग के प्रारम्भ के वर्षों में बनाया गया है. इसकी तल-संरचना भी चैत्यगृह जैसी है. उसकी छत (Roof) शिलापटों से की गई समतलीय रचना है. यह छत चारों तरफ फैले हुए बरामदे तक है, जो भारी मदल (Brackets) युक्त महाकाय स्तंभों के आधार पर निर्मित किया गया है.

एक ऊँची पीठ पर रचे गए इस समतल छत युक्त मन्दिर के गर्भगृह पर भी उत्तर भारतीय शिखर देखने को मिलता है. बारिक नजर से अवलोकन करते हुए स्पष्ट दिखाई देता है कि यह शिखर बाद में बनाया गया है. इस समूह का एक अन्य उदाहरण अर्थात् हच्चीमल्लीगुडी का मन्दिर है.[13] हच्चीमल्लीगुडी का मन्दिर संभवत: पांचवीं शताब्दी में बनाया गया था, परन्तु उस पर शिखर

13. Coomaraswamy, Ananda K., 1927, *History of Indian and Indonesian Art,* Edward Goldston, London, Fig. 153, p. 79, 240.



(Fig. 4.0) सांची का समतल छतयुक्त मन्दिर (क्रमांक 17)



(Fig. 5.0) तिगवा का कंकालीदेवी समतल छतयुक्त मन्दिर, 5 वीं शताब्दी.

की रचना बाद में की गई मालूम होती है.[14]

इस प्रकार गुप्तकाल के ऐसे उदाहरणों से कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि छठवीं शताब्दी तक उत्तर भारतीय मन्दिर की परम्परा में मन्दिरों की रचना शिखरविहिन होती थी, लेकिन छठवीं शताब्दी पूर्ण होने तक मन्दिर के गर्भगृह की समतल छत पर एक नया अंग (New member) शामिल किया गया, जो उत्तर भारतीय मन्दिर स्थापत्य में शिखर की रचना की शुरुआत थी.

सब से प्राचीन शिखर देखने को मिलता है – देवगढ़ (Deogadh, Fig. 7.0) में. झांसी के निकट देवगढ़ के दशावतार मन्दिर का अध्ययन करने के बाद कनिंगहाम द्वारा सन् 1875 में प्रकाशित किए फोटोग्राफ से पता चलता है कि मन्दिर के गर्भगृह पर शामिल किए गए इस नए अंग में, चैत्याकृति खिडकियाँ (Chaitya windows) तथा गुप्तयुग के अलंकरण देखने मिलते हैं.[15] पत्थरों से निर्मित इस मन्दिर की दीवारें साधारण सी हैं, परन्तु उनमें तीन तरफ से गजेन्द्र मोक्ष, अनंतशायी विष्णु जैसे शिल्पपट्ट (Sculptured panels) भी हैं. प्रवेशद्वार की शाक (Jambs) पर नदी एवं देवी-देवताओं (River goddesses) के शिल्प अंकित हैं.

इस प्रकार से नगोड़ (Nagod) के समीप शंकरगढ़ गाँव में भी मन्दिर-शिखर का वैसा ही उदाहरण उपलब्ध है, जैसा गुप्तकाल में है. परन्तु, यह देवगढ़ से कुछ अधिक प्राचीन जान पड़ता है.[16] यहाँ चार उपमन्दिर (परिवारालय?) देखने को मिलते हैं, जिनके गर्भगृह के समतल छत पर केवल आमलक की रचना की गई थी, खुदाई (Excavation) के दौरान ये आमलक प्राप्त हुए हैं.[17]

इस तरह से आम तौर पर यह प्रचलित मान्यता दृढ़ हो चुकी है कि छठवीं शताब्दी से ही मन्दिर के प्रासाद पर शिखर की रचना का प्रारंभ हुआ था. यह एक दृष्टिकोण है, परन्तु भारतीय वास्तु--शिल्प के एक विद्यार्थी के रूप में मुझे लगता है कि इससे अलग एक दूसरा दृष्टिकोण भी देखना

14. Banerji, R. D., 1933, *The Age of The Imperial Guptas,* The Benares Hindu University, Calcutta, p. 137.
15. Cunningham, A., 1871-1887, *Archaeological Survey Reports*, Vol. X, pl. XXXV.
16. Banerji, R. D., 1933, *the Age of the Imperial Guptas,* The Benares Hindu University, Calcutta, p. 140.
17. ibid, p. 146.



(Fig. 6.0) ऐहोल का शिखरविहीन मन्दिर, 5 वीं शताब्दी.



(Fig. 7.0) देवगढ का ऐतिहासिक मन्दिर, शिखर-रचना का सर्व प्रथम कथित उदाहरण.

चाहिए. उपरोक्त उदाहरणों से विपरीत कुछ ऐसे मुद्दे भी विचार करने लायक हैं, जिनसे 'छठवीं शताब्दी के आरंभ के पूर्व मन्दिर के प्रासाद पर शिखरों की रचना नहीं होती थी', उस प्रचलित मान्यता पर प्रश्न-चिन्ह लग सकते हैं. यहाँ क्रमानुसार ऐसे कुछ मुद्दों पर एक दृष्टि करें –

1. कुषाण युग के अवशेष:

भारतीय पुरातत्त्वीय क्षेत्र में कुषाण युग के ऐसे कुछ अवशेष ध्यानाकर्षक हैं.

जैसे कि, बिहार में पाटलिपुत्र (पटना) के पास कुमराहार नामक स्थान पर हुई खुदाई के दौरान डॉ. डी.बी. स्पूनर द्वारा संशोधित 'Bodhgaya plaque' के रूप में प्रसिद्ध अवशेष अध्ययन करने योग्य है. (Fig. 8.0) आर्कियोलॉजीकल सर्वे ओफ इन्डिया के रिपोर्ट्स के आधार पर कुमार स्वामी ने उसका समय पहली शताब्दी का अनुमान लगाया है.[18] इस प्लेक में मन्दिर पर शिखर की आकृति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है. इतना ही नहीं, उस पर अमृत कलश भी देखा जा सकता है. यद्यपि यह शिखर उत्तरी भारत की नागर शैली का वक्ररेखाकार (Curvilinear) शिखर नहीं है, फिर भी प्राचीनतम शिखर के एक उदाहरण के रूप में यह अवश्य ही उल्लेखनीय है.[19]

---

18. Coomaraswamy, Ananda K., 1927, *History of Indian and Indonesian Art,* Edward Goldston, London, Fig, 144, 145, p. 239.

19. बिहार का प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर 'महाबोधि' अधिकांशत: 'वज्रासन की गंध कुटी' के रूप में प्रसिद्ध था. आधुनिक समय में खड़ा हुआ मन्दिर भिन्न-भिन्न समय पर अनेक बार किए गए मरम्मत के कारण देखने को मिलता है. (Coomaraswamy, 81) नवभूमि युक्त उसका ऊँचा शिखर का ऊर्ध्वमान सीधी रेखा में मिलता है. प्रत्येक स्तर में आमलक (fluted, bulbous) जैसी रचना भी देखने को मिलती है. सातवीं शताब्दी में भारत की यात्रा पर आये हुए ह्यु एन त्संग (Hiuen Tsang) ने बोधगया के इस मन्दिर को देखा था. आज जिस प्रकार से मन्दिर का परिमाण देखने को मिलता है, ठीक उसी ऊँचाई के लगभग आसपास कहा जा सकता है, वैसी चौड़ाई के परिमाण की उसने सूक्ष्मता से जिक्र की है. उसके पूर्व पाँचवीं शताब्दी में यहाँ की यात्रा पर आए फाह्यान ने भी गौतम बुद्ध के जीवन की चार महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साथ जुड़े हुए स्थानों में मन्दिर होने का उल्लेख किया है. अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में यहाँ मन्दिर जैसा कुछ होना चाहिए. इस विषय में कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि संभवत् आज जैसा स्वरूप है, वैसा ही मन्दिर दूसरी शताब्दी में यहाँ स्थापित हुआ था. कुछ विद्वानों ने उसका निश्चित कारण भी बताया है. उनमें से एक कारण प्रसिद्ध 'बोधगया प्लेक' है.



(Fig. 8.0) कुमराहार से प्राप्त प्रसिद्ध 'बोधगया प्लेक' में शिखराकृति, प्रथम शताब्दी.

मथुरा से प्राप्त हुए कुषाण युग का एक अन्य उदाहरण भी कुमार स्वामी ने प्रस्तुत किया है. प्रथम शताब्दी के लाल बलुवे पत्थर के इस अवशेष में भी एक उभड़ी हुई नक्काशी (Relief) में मन्दिर पर स्पष्ट रूप से शिखराकृति देखी जा सकती है. शिखर-मन्दिर के दोनों तरफ खड़े हुए स्तंभ, ध्वज स्तंभ जैसे लगते हैं.[20]

कुषाण युग का यह प्रमाण, मन्दिर के शिखर की रचना का समय निर्धारित करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है. उससे यह बात निश्चित हो जाती है कि छठवीं शताब्दी के पहले भी भारतीय मन्दिर-स्थापत्य में स्थपतियों के लिए शिखर की रचना अज्ञात नहीं थी.

2. नचना कुथरा का चतुर्मुख मन्दिर

नचना कुथरा के समतल छतयुक्त (Flat-roofed) पार्वती मन्दिर की चर्चा हमने पहले ही की है, परन्तु 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आर्कियोलॉजिकल सर्वे ओफ इन्डिया के प्रखर विद्वान श्री आर. डी. बनर्जी ने नचना कुथरा के एक अन्य मन्दिर की भी चर्चा की है, जो चतुर्मुख महादेवजी का मन्दिर है. जिस समय कनिंगहाम ने उसकी मुलाकात ली थी तब, उस पर 40 फुट ऊँचा वक्राकार शिखर था. आर. डी. बनर्जी ने उसका समय गुप्त युग के प्रारम्भ का बतलाया है.[21]

ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि, 'छठवीं शताब्दी के पूर्व भी भारत के मन्दिर-प्रासादों पर शिखर की रचना नहीं होती थी' – इस अभिप्राय पर इतिहास की दृष्टि से पुनरावलोकन-पुन: आलोचना करनी चाहिए. संभवत: शिखर की रचना के मूल गुप्त युग से पहले बहुत ही प्राचीन हैं. हालांकि यहाँ उस चर्चा के लिए विशेष अवकाश नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहना चाहिए कि उस प्राचीन समय में काष्ठ के मन्दिर होने के कारण उसके पुरातत्त्वीय अवशेष उपलब्ध नहीं है. केवल पुरातत्त्वीय अवशेष उपलब्ध न होने के आधार पर प्राचीन मन्दिरों की शिखरविहीनता पर चर्चा करने

20. Coomaraswamy, Ananda K., 1927, *History of Indian and Indonesian Art,* Edward Goldston, London, Pl. XIX, Fig, 69, p. 239.
21. Banerji, R. D., 1933, *The Age of The Imperial Guptas,* The Benares Hindu University, Calcutta.



(Fig. 9.0) मथुरा से प्राप्त प्रथम शताब्दी के तोरण में चैत्यगृह के ऊपर शिखर रचना.



(Fig. 10.0) त्रिमंजिला घंटशाला के शिल्प में शिखरतुल्य रचना, प्रथम शताब्दी.

में अपूर्णता ही रह जाएगी.

मन्दिर - प्रासाद का प्राचीन मूल

आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के दौरान हुए मन्दिर-स्थापत्य के विकास क्रम पर दृष्टिपात करने से इतना निश्चित विश्वास हो जाता है कि समय की दृष्टि से भले ही विद्वानों द्वारा मन्दिर की पूर्ण विकसित अवस्था अलग ढंग से देखी जाती हो, परन्तु उसका मूल बहुत प्राचीन है.

स्टेला क्रेमरिश लिखती हैं कि 'It's structure is rooted in Vedic tradition.'[22] अर्थात् मन्दिर स्थापत्य के मूल वैदिक परम्परा से जुड़े हैं.

हालांकि वैदिक संहिता में मूर्तिपूजा के कुछ निर्देशों[23] के अतिरिक्त मन्दिर-स्थापत्य के सीधे संदर्भ प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वैदिक संहिता के काल में यज्ञों का विशेष महत्त्व होने से यज्ञकुण्डों की रचना में भूमिति का अत्यधिक विकास हुआ था, उसी भौमितिक कौशल्य का ही मन्दिर-स्थापत्य की विकासयात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है.[24]

इसके उपरांत मन्दिर के मूल, प्राचीन भारतीय चैत्यगृह की परम्परा में भी पाये जाते हैं. प्राचीन भारत में पूजा के योग्य किसी वस्तु को 'चैत्य' के रूप में पहचाना जाता था. आश्वलायन गृहसूत्र में चैतयज्ञ का विधान है.[25]

'चैतयज्ञे प्राक् स्विष्टकृतश्चैताय वलिंहरेत्।'

चैत्यपूजा के अनेक प्रमाण रामायण, महाभारत के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन साहित्य में भी प्राप्त

22. Kramrisch, Stella, 1976, Preface, *The Hindu Temple*, Motilal Banarasidas, Delhi.
23. ऋग्वेद: 10.81.3; 30.307.30, अथर्ववेद: 2.13.4; 1.13.1; शतपथ ब्राह्मण: 14.2.2.54.
24. Vatsyayan, Kapila, 1997, *The Square and the Circle of the Indian Arts*, Abhinav Publications, New Delhi.
25. आश्वलायन गृहसूत्र 1.12.

होते हैं. रामायण के सुंदरकाण्ड में 'चैत्यप्रासाद' का उल्लेख करते हुए महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं –

चैत्यप्रासादं मेरुशृंगमिवोन्नतम् ॥[26]

ऐसे चैत्यप्रासाद की रक्षा के लिए 'चैत्यपाल' की भी नियुक्ति की जाती थी.[27]

महाभारत में भी अनेक स्थानों पर 'चैत्य' का उल्लेख प्राप्त होता है. जैसे, शांतिपर्व में मरुत राजा का वर्णन करते हुए चैत्य-माल का उल्लेख किया गया है, तो मगध के सुन्दर चैत्य का उल्लेख सभापर्व में लिखा गया है –

अकृष्टपच्या पृथिवी विबभौ चैत्यमालिनी ॥[28]
मागधानां सुरुचिरं चैत्यकान्तं समाद्रवन ॥[29]
चैत्यकं च गिरेः शृङ्गं भित्त्वा किमिव सद्म नः ॥[30]

इसी अर्थ में महाभारत के आधार पर 'वृक्षचैत्य' का वर्णन किया गया है.[31] इन शास्त्रीय उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ पुरातत्त्वीय प्रमाण चैत्य परम्परा को विशेष रूप से स्पष्ट करते हैं, जिसमें चैत्य गृह पर विभिन्न शिखराकृतियाँ दिखाई देती हैं. मथुरा से प्राप्त प्रथम शताब्दी के तोरण में चैत्यपूजा – बोधीवृक्ष-पूजा के शिल्प में चैत्यगृह के ऊपर दिखाई देती शिखर रचना ध्यानार्ह है. (Fig. 9.0) वर्तमान में पैरिस के ग्यूमेट संग्रहालय में स्थित घंटशाला का शिल्प (प्रथम शताब्दी) भी शिखर के अध्ययन के लिए दृष्टव्य है. (Fig. 10.0)

उन चैत्यों की कुछ पुरातत्त्वीय आकृतियों पर से इतना तो स्पष्ट होता है की मन्दिर-रचना के प्रारंभिक समय में भी समतल छत पर मुकटरूपी कुछ रचना अवश्य होनी चाहिए. काष्ठ आदि द्रव्यों से निर्मित होने के कारण उन स्थापत्यों के अवशेष उपलब्ध नहीं हैं. किन्तु उसी की प्रतिकृति के रूप में जब पत्थरों के मन्दिर होने लगे, तब उस प्रारंभिक समय में संभवत: संरचनात्मक (Structural) कारणों से या अन्य किसी कारणों से शिखर की रचना नहीं की होगी. किन्तु केवल उनके आधार पर ठोस रूप से यह कहा नहीं जा सकता कि मन्दिर-प्रासाद पर शिखर की रचना छठवीं शताब्दी के बाद ही प्रारंभ हुई थी.

चैत्य परम्परा के उपरांत, मन्दिर-शिखर की आकृति कैसे विकसित हुई होगी, उसके विषय में दो प्रमुख मान्यताएँ हैं. यहाँ उन मान्यताओं पर एक दृष्टिपात करते है...

प्रथम मान्यता: बांस के पूजा मंडप से शिखर तक

मन्दिर के शिखर (Superstructure) की उत्पत्ति के विषय में अनेक मान्यताएँ हैं. उनमें से एक मान्यता है, बांस (Bamboo) की रचना में से मन्दिर के शिखर की उत्पत्ति.

स्टेला क्रेमरिश लिखती हैं कि भारत में मन्दिर स्थापत्य के प्रारम्भिक स्वरूपों में से एक स्वरूप है – पूजा का मांडव.[32] प्राचीन भारत में बगीचों में, उपवनों में तथा आज भी बहुत से स्थलों पर

---

26. सुन्दरकाण्ड: 43.3.
27. अग्रवाल, वासुदेवशरण, 1964, *प्राचीन भारतीय लोकधर्म,* ज्ञानोदय ट्रस्ट, पृ. 53.
28. शांतिपर्व, 39.18.
29. समापर्व, 29.17.
30. समापर्व, 29.21.
31. अग्रवाल, वासुदेवशरण, 1964, *प्राचीन भारतीय लोकधर्म,* ज्ञानोदय ट्रस्ट, पृ. 53.
32. Kramrisch, Stella, 1976, *The Hindu Temple,* Motilal Banarasidas, Delhi, p. 156.

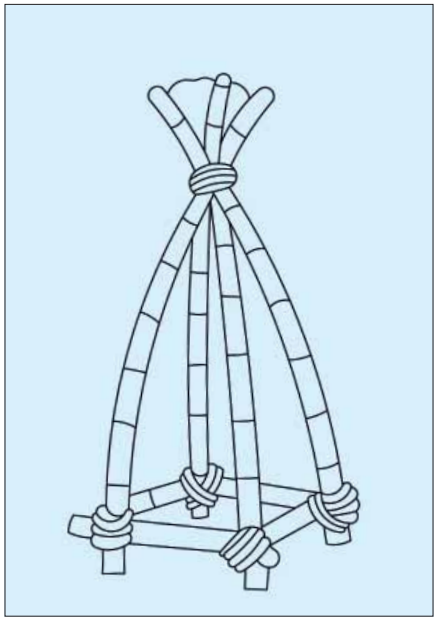

(Fig. 11.1)
बांसनिर्मित पूजामांडव: शिखर का प्राथमिक स्वरूप ?

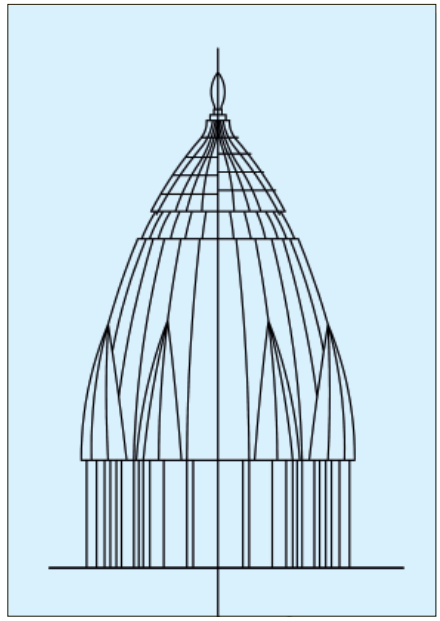

(Fig. 11.2)
बांस की रचना में से विकसित प्रारंभिक अस्थायी मन्दिर.

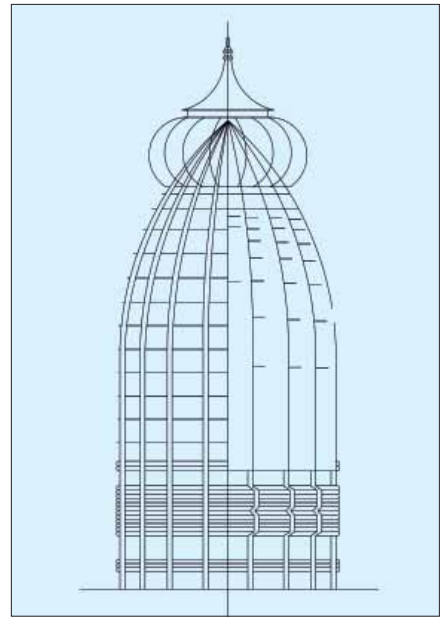

(Fig. 11.3)
बांस की रचना में से विकसित प्रारंभिक अस्थायी मन्दिर.

पूजाविधि सम्पन्न करने के लिए मांडव (Tabernacle) बनाने की परम्परा रही है. वृक्षों की कोमल डालियों अथवा केला वृक्ष के स्तंभ या पत्तियों की कमान (Arch) बनाकर उसके नीचे पूजाविधि सम्पन्न करने का विधान 'आपस्तंब श्रौत सूत्र' में दिया गया है. वृक्ष-लता-पत्तों में से बने हुए ये अस्थायी गर्भगृह (Sanctuary) कुछ विशेष प्रकार की पूजाविधि के लिए ही आरक्षित रखे जाते थे.[33] उसका स्वरूप नितांत अस्थायी होता है, जो केवल पूजाविधि सम्पन्न करने तक ही उपयुक्त रहता है. उसके पश्चात् उसका विसर्जन कर दिया जाता है. ऐसे पूजा स्थलों में बांस (Bamboo) तथा केला वृक्ष के पत्तों का विशेष उपयोग किया जाता था. यह अत्यन्त ही प्राचीन पद्धति आज भी जीवंत है. (Fig. 11.1)

यद्यपि उसका मूल वैदिक यज्ञ की परम्परा के साथ जोड़ा गया है. प्राचीन भारत में वैदिक काल में यज्ञों का आयोजन खुले आकाश के नीचे एक वेदिका(पीठ) पर किया जाता था. बाद में उसी वेदिका(पीठ) पर यज्ञों के स्थान पर देवताओं की चलमूर्तियाँ स्थापित करके, उसकी आराधना प्रारम्भ की जाती थी, तभी से मिट्टी, पत्थर अथवा काष्ठ से बनी हुई मूर्तियों की सुरक्षा हेतु बांस की बल्लियों को चार कोने में रखकर उस पर ऊपर का छोर एक-दूसरे से बाँधकर एक शिविर या मांडव (Tabernacle) जैसी अस्थायी रचना का चलन शुरू हुआ था. उस पर पेड़ों की पत्तियों का आवरण लगा देने से एक देवल (Shrine) जैसी रचना की गई. हवा आदि प्राकृतिक परिबलों के समक्ष यह रचना मज़बूती से टिक सके, उसके लिए एक से अधिक बांस-बलियों को एक धुरी में इकट्ठा करके, उसके ऊपरी भाग को बाँध दिया जाता था. उससे बांस से निर्मित शिखरयुक्त मन्दिर (Shrine) अधिक सज्जित हो जाता था. (Fig. 11.2-3) इतना ही नहीं, उसकी खड़ी दीवारों पर ऐसे गोखों की भी रचना की गई, जिनमें अन्य देव-देवियों की मूर्तियाँ स्थापित की जा सकें. धीरे-धीरे गाँव-गाँव में ऐसे बांसनिर्मित शिखरयुक्त छोटे-छोटे आकार के देवघर या पूजास्थल बनने लगे और

33. Brown, Percy, 1942, *Indian Architecture: Buddhists and Hindu Period,* Taraporevala and Sons, Bombay, p. 22.

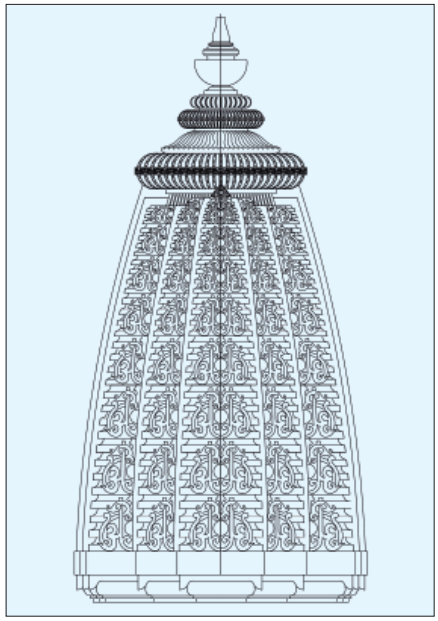

(Fig. 11.4)
पत्थर निर्मित मन्दिर का एकांडिक शिखर.

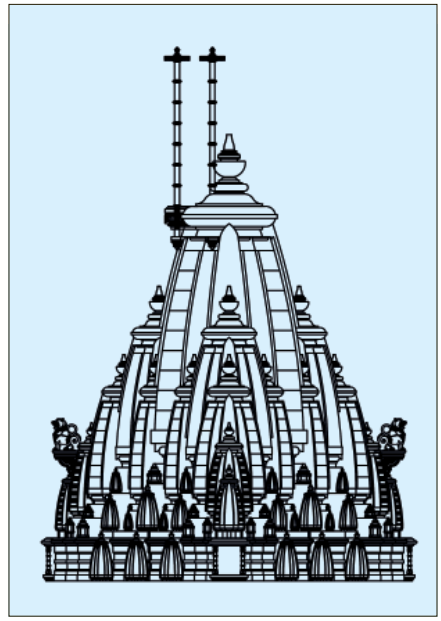

(Fig. 11.5)
रथ-प्रतिरथयुक्त शिखर की पूर्ण विकसित अवस्था.

उसे विभिन्न प्रकार से कलाकृतियों से अलंकृत किये जाने लगे. क्रमशः उसमें कलात्मक रूप से काष्ठ का अधिक उपयोग किया जाने लगा.[34]

हो सकता है कि शताब्दियों तक इस तरह की रचना का प्रचलन रहा हो. यद्यपि ये पूजास्थल दीमक, पानी तथा आग जैसी आपत्तियों के समक्ष टिक नहीं सकते थे. इसके लिए उस युग के मनुष्यों ने नए-नए विकल्पों को खोजना प्रारम्भ किया. परिणामस्वरूप पाँचवीं शताब्दी तक काष्ठ तथा बांस के स्थान पर पत्थर के प्रयोग किये जाने लगे. संभवतः इसी से क्रमशः एक शिखरयुक्त मन्दिर की आकृति का जन्म हुआ. भले ही द्रव्य बदल गया हो, लेकिन उसकी आकृति वही की वही रही; पदार्थ बदल गया, लेकिन उसका स्वरूप वैसा ही रहा.

इस प्रकार नागर शैली के मन्दिरों का स्वरूप निर्णित हुआ. एक वेदिका-अधिष्ठान पीठ पर मज़बूत दीवारों द्वारा चतुष्कोणीय गर्भगृह की रचना हो और उस पर चार बांस की गांठ बँधी हुई रचना, जैसे शिखर (Superstructure) की रचना हो. धीरे-धीरे शिखर पर पद्धति के अनुसार गणित-प्रमाणों का उपयोग करके, एकांडिक शिखरकृत पर (Fig. 11.4) रथ-प्रतिरथ, शृंग-उरुशृंग शामिल किये जाने लगे और उसमें से छठवीं शताब्दी तक शिखर का स्वरूप परिपक्व हो गया. (Fig. 11.5)

भारत में मध्यप्रदेश में खजुराहो तथा उड़ीसा में भुवनेश्वर के मन्दिर इस दृष्टि से अध्ययन करने योग्य हैं. शिखर की आकृति में हुई क्रमिक उत्क्रांति खजुराहो में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है. लगभग 950 AD में प्रारम्भ हुए खजुराहो के मन्दिरों का युग लगभग एक शताब्दी तक अपनी चरमसीमा पर था, जिनमें से 50 से अधिक मन्दिरों के प्रासाद आज भी खड़े हैं. वोल्वाहसेन[35] के अनुसार, मन्दिर स्थापत्य में शिखर का विकास चालुक्य वंश के द्वारा ऐहोल (Aihole) के आसपास

34. Volwahsen, Andreas, 1969, *Living Architecture*, *Indian,* Oxford & IBH Publishing Company, New Delhi, p. 144.
35. Volwahsen, Andreas, 1969, *Living Architecture*, *Indian,* Oxford & IBH Publishing Company, New Delhi, p. 148.

प्रारम्भ हुआ था. बांस के मन्दिरों से पत्थर के स्थापत्य का प्रारम्भ हुआ, उसमें उड़ीसा के कलाकारों का बड़ा योगदान रहा था. बांस के मन्दिर से प्रेरणा लेकर उन्होंने मन्दिरों पर पत्थर के शिखरों की रचना प्रारम्भ की. धीरे-धीरे मन्दिर के गर्भगृह के सामने भिन्न-भिन्न प्राग्रीव मंडप आदि प्रकार के मंडप शामिल होते गए और मन्दिर का एक रेखात्मक (Linear) स्थापत्य विकसित हुआ.

द्वितीय मान्यता: शिखर तथा पर्वत के संबंध की मान्यता

मन्दिर के प्रासाद पर शिखरों की रचना के विषय में दूसरी मान्यता पर्वतीय शिखरों के साथ जुड़ी हुई है.

हिन्दू धर्म की परम्परा में प्रकृति की गोद में बैठकर आध्यात्मिक साधना करने की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है. इसीलिए भारत में प्राचीनकाल से आध्यात्मिक साधकों के लिए हिमालय या गिरि-कन्दराओं का महत्त्व और उसका आकर्षण अत्यधिक रहा है. युगों से तपस्वियों, ऋषियों, योगियों आदि को हिमालय पर्वत की गुफाओं का एकान्त विशेष रूप से पसन्द रहा है. पर्वतों के शिखरों के नीचे, गुफाओं में बैठकर प्रकृति के उस अद्‌भुत सौन्दर्य के सर्जक परमात्मा का ध्यान करनेवाले वे साधक समय-समय पर नगरों में निवास करने लगे तब, नगरों में बस्ती के बीच प्रकृति के शांत-एकान्त में दिव्यता की अनुभूति के लिए उन्होंने मन्दिरों का निर्माण किया. परिणामस्वरूप मन्दिर के आकार में पर्वत-शिखरों की विभावना सहजतापूर्वक आरोपित हुई. मन्दिर का शिखर अर्थात् पर्वत का शिखर और गर्भगृह अर्थात् शिखर के नीचे की गुफा.

मन्दिर के शिखर एवं पर्वतों का यह अनुसंधान प्राचीन भारतीय वास्तु-साहित्य में अलग-अलग ढंग से प्रतिबिंबित हुआ है. वास्तुकला के प्राचीन शास्त्रकारों ने मन्दिरों के विभिन्न प्रकारों के लिए पर्वतों के नाम पसन्द किये, वह भी एक अद्‌भुत संयोग है!

छठवीं शताब्दी में वराह मिहिर ने प्राचीन स्थापत्य ग्रंथ बृहत्संहिता[36] में मन्दिरों के 20 प्रकारों का वर्णन इस प्रकार किया है:

> मेरु मन्दर-कैलास-विमानच्छन्दनन्दना: । समुद्‌गपद्मगरुडनन्दिवर्धन कुंजरा: ॥ 17
> गुहराजो वृषो हंस: सर्वतोभद्रको घट: । सिंहो वृत्तश्चतुष्कोण: षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥ 18
> इत्येते विंशति प्रोक्ता: प्रासादा संज्ञया मया । यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यत: ॥ 19

अर्थात् 'मेरु, मन्दर, कैलाश, विमानच्छंद, नंदन, समुद्‌ग, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुंजन, गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडषश्री तथा अष्टाश्री; ये 20 प्रकार के मन्दिर कहे गए हैं.

उन सभी प्रकारों के प्रासादों में मेरु नामक प्रासाद षट्‌कोण के आकार का होता है. वह बारह मंजिलों (भौम) का; तथा विविध प्रकार के गवाक्षों से युक्त होता है. उसके चार दिशाओं में चार द्वार होते हैं और 32 हाथ का क्षेत्र होता है.

मन्दिर नामक प्रासाद षटकोण के आकार का, 30 हाथ लंबे-चौड़े क्षेत्र का, 10 मंजिल तथा शिखरयुक्त होता है. कैलाश नामक प्रासाद भी शिखरयुक्त, 28 हाथ क्षेत्रफल का तथा षटकोण आकार का होता है.[37]

यहाँ यह स्पष्ट है कि बृहत् संहिता में मन्दिरों के प्रकारों की व्याख्या करने में पर्वतों के नामों

36. बृहत् संहिता: 56.17-19.
37. बृहत् संहिता: 56.20-21.

को प्रयुक्त किया गया है. यहाँ दूसरी महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय बात है – 'शिखरयुक्त'! अर्थात् वराह मिहिर (छठवीं शताब्दी) के समय में शिखर की रचना का विधान यह सूचित करता है कि छठवीं शताब्दी के दौरान मन्दिरों पर शिखरों की रचना व्यवहार में सामान्य होनी चाहिए.

मत्स्यपुराण भी इसे दुहराता है. मेरु, मंदराचल तथा कैलाश पर्वतों के नाम-प्रयोजन से मत्स्यपुराण[38] भी मन्दिरों के ऐसे ही अन्य 20 प्रकारों का भी वर्णन करता है:

मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च ॥
अनेकश्चन्द्रशालश्च गज: प्रासाद इष्यते पर्यस्तगुहराजो वै गरुडो नाम नामत: ॥

यहाँ जैसे पर्वतों के नामों का मन्दिर-प्रकारों में प्रयोजित होना सांकेतिक है, वैसे ही 'गुहराज' नाम भी सांकेतिक है. 'गुहराज' अर्थात् गुफाओं में सर्वोत्तम! उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल से भारत में देवताओं तथा पर्वत-गुफाओं का संबंध प्रचलित रहा है. वायुपुराण[39] में भिन्न-भिन्न देवताओं के निवास स्थान के रूप में भिन्न-भिन्न पर्वतों तथा गुफाओं का सुंदर वर्णन किया गया है. जैसे – वसुधार पर्वत पर वसुगणों के पूज्यतम 8 आयतन (घर) हैं. रत्न धातुगिरि पर सप्तर्षियों के 7 आश्रम हैं. हेमश्रृंग पर्वत पर प्रजापति ब्रह्मा का निवास स्थान है. सुमेध पर्वत पर अनेक खूबसूरत कंदराएँ हैं, उनमें आदित्य, वसु तथा अश्विनीकुमार आदि देवगण निवास करते हैं. यहाँ पर अन्य महान देवता भी निवास करते हैं, जिनकी यक्ष-गंधर्व-किन्नर सदैव पूजा करते रहते हैं. अनेक परिखा तथा गुफाओं--कंदराओं से युक्त विशाख पर्वत की गुहा में गुह (कार्तिकेय) का विशाल निवास स्थान है.

विशाखे पर्वतश्रेष्ठे नैकवप्रदरीशुभे। गुहानिरतवासस्य गुहस्याऽऽयतनं महत्॥ 55
श्वेतोदरे महाशैले महाभवनमण्डिते। पुरं गरुडपुत्रस्य सुनाभस्य महात्मन: ॥ 56
पिशाचके गिरिवरे हर्म्यं प्रासादमण्डितम्। यक्षगन्धर्वचरितं कुवेरभवनं महत्॥ 57
हरिकूटे हरिर्देव: सर्वभूतनमस्कृत:। प्रभावात्तस्य शैलोऽसौ महानाभ: प्रकाशते॥ 58
कुमुदे किन्नरावासा अंजने च महोरवा:। कृष्णे गन्धर्वनगरा महाभवनशालिन: ॥ 59
पाण्डुरे चारुशिखरे महाप्रकारतोरण। विद्याधरपुरं तत्र महाभवनशालिनम्॥ 60

वायुपुराण के उस अध्याय 'शैलस्थितविविधदेवालयकीर्तनम्' – के विषय में श्री प्रसन्नकुमार आचार्य लिखते हैं:

'The Vayu, which is one of the very early Puranas, maintains its unique position by dealing with the construction of various temples built upon mountain tops. Examples of these temples are still found on several peaks of the Himalaya and the Vindhya ranges.[40]

प्रसन्नकुमार आचार्य के मतानुसार पौराणिक युग में मन्दिरों तथा पर्वतों के बीच न केवल एक तुलनात्मक संबंध था, बल्कि पर्वतों पर पर्वत शिखर की प्रतिकृति के समान मन्दिरों की रचनाएँ भी होती थीं.

मन्दिर तथा पर्वतों के बीच का यह संबंध कुछ प्राचीन मन्दिरों के अभिलेखों में भी दिखाई देता

38. मत्स्यपुराण, 269, 28, 41.
39. वायुपुराण, 39.55-60.
40. Acharya, Prasanna Kumar, 1927, *Indian Architecture According to Manasara-Shilpashastra,* The Oxford University Press, London, p. 21.

है. कुछ प्राचीन मन्दिरों के शिलालेखों अथवा ताम्रपत्रों में मन्दिर का पर्वत के रूप में वर्णन किया गया है. कुछ उदाहरण देखिए –

● सन् 437–438 AD में निर्मित हुए मांडसर के सूर्य मन्दिर से प्राप्त हुए शिलालेख में वर्णन किया गया है कि 'उसके विशाल और भारी शिखर पर्वत के ही प्रतिबिंब हैं.'[41]

● येवुर के स्वयंभू शिव मन्दिर के शिलालेख में भी मन्दिर तथा कैलाश पर्वत का संबंध अत्यंत स्पष्ट दिखाई देता है. शिलालेख में लिखा गया है –

> The golden spire, with its auspicious ornament of this house of Svayambhu-Shiva is such that it may be said that this is the silver mountain which has obtained, by the gift of Isha, the possession of a golden summit; it is a tree of desire on the (white pile of) Hara's laughter (namely), the mountain Kailasa, crowned by a summit radiant with young red spouts, in it there is combined the unique substance of the white body and the tawny towering matted hair of the Lord of Uma.'[42]

पेण्णा (Penna) नदी के तट पर राजादित्य द्वारा निर्मित शिवमन्दिर का शिलालेख मन्दिर के भव्य प्रासाद को मंदराचल पर्वत की उपमा देता है:

> राजादित्यस्यसाक्षाद् अविचलितमुनायको माधुरान्ते: मौलिग्रामेधि पेण्णातटधरणी शिलामन्दिरम् मन्दराभम् महादेवम् महाश्री: स्थिरा...[43]

खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर की नींव में से प्राप्त हुआ खजुराहो का शिलालेख इस तरह वर्णन करता है:

> 'A charming, splendid home of Vishnu which rivals the peaks of the mountains of snow.'[44]

इन उदाहरणों से निर्धारित किया जा सकता है कि पर्वत की विभावना को मन्दिर के आकार में सिद्ध करने के लिए प्राचीन हिन्दू स्थपतियों ने मन्दिर के शिखरों के विभिन्न आकार विकसित किए. चतुष्कोणीय शिखर, अष्टकोणीय शिखर, अर्धगोलाकार (Dome shaped) वृत्त शिखर, वर्तुलाकार अथवा शंकु आकार के शिखर आदि क्रमश: समय-समय पर उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के विकल्प भी विकसित होते रहे और समय-समय पर उसमें अधिक से अधिक अंगों-उपांगों को शामिल किया जाता रहा.

शिलालेखों के उपरांत साहित्य ग्रंथों का भी परिशीलन करते हैं. प्राचीनकाल से भारतीय वास्तु विद्या में प्रयोजित 'प्रासाद' तथा 'शिखर' एक सांकेतिक परिभाषा है. प्राचीन महाकाव्यों, रामायण

---

41. '(The temple having) broad and lofty spire... with (its) charming spires.' - Corpus Inscriptionum Indicarum, III P. 83, in Kramrisch, Stella, 1976, *The Hindu Temple, Motilal Banarasidas, Delhi,* p. 161.
42. Inscription from Yewur (1077), v. 98, *Epigraphia Indica*, Archaeological Survey of India, Vol. XII, pp. 282, 289.
43. 'Rajaditya, son of Madhuranta, built, at this (village of) Mauligrama in the country on the bank of the (river) Penna, a permanent stone temple (mandira) dedicated to (the god) Mahadeva (i.e. Shiva), (resembling) in Iustre (the mountain) Mandara.'
-ASIAR 1905-6, p. 183.
44. *Epigraphia Indica*, 1892, Archaeological Survey of India, vol. 1, p. 121.

तथा महाभारत में भी उसका कई बार प्रयोग हुआ है. प्रासाद की भव्यता प्रस्तुत करने हेतु भी कईबार कैलाश पर्वत अथवा मेरु पर्वत की उपमा दी गई है. कुछ उदाहरण:

विंध्य मेरु गिरि प्रखैः प्रासादैः न एक भूमिभिः।
ददर्श गिरि नद्यः च विमलाः तत्र राघवः॥[45]

महाकाव्यों में प्रस्तुत प्रासाद-शिखर के निर्देश भी अभ्यसनीय हैं.

रामायण तथा महाभारत के महाकाव्यों में जो 'प्रासाद' के निर्देश मिलते हैं, वे महलों के अर्थ में हैं या मन्दिर के अर्थ में हैं, उसे निर्धारित करने में विशेष अध्ययन-शोधकार्य की आवश्यकता है, लेकिन उसमें प्रासाद तथा उसके शिखर का पर्वतों के साथ जो तुलनात्मक उल्लेख है, वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विषय बन सकता है.

रामायण में प्रासाद की भव्यता अभिव्यक्त करने के लिए कईबार कैलाश पर्वत अथवा मेरु पर्वत की उपमा दी गई है. वाल्मीकि रामायण के ऐसे कुछ उदाहरणों पर दृष्टि कीजिए –

कैलासशिखराकारा त्प्रासादादवरोहत।[46]
स तं कैलाश-श्रृंगाभं प्रासादं... रघुनन्दनः[47] आरुरोह...।
प्रासादश्रृंगेषु...।[48]
ततो हेमप्रतिष्ठाने वरास्तरणसंवृते।
प्रासादशिखरे रम्ये चित्रमाल्योपशोभिते।[49]
मेघसंघोपमैः शुभैः....।
प्रासादश्रृंगैर् विविधैः कैलाश-शिखरोपमैः....।[50]
वानरेन्द्र-गृहं... शुक्ल-प्रासाद-शिखरैः कैलाश-शिखरोपमैः....।[51]
प्रासादशिखरं शैलश्रृंगं इवोन्नतम्...।[52]
प्रासादवरवर्ये सीतावत्सु सुगंधीषु...।
उषित्वा मेरुकल्पेषु कृतकांचनभित्तिषु।[53]

प्रसन्नकुमार आचार्य उपर्युक्त श्लोकों के सन्दर्भ में लिखते हैं कि रामायण में प्रकाशित स्थापत्यकीय परिभाषाओं को (Architectural terms) गंभीरता से लेनी चाहिए. वे किसी कवि की कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि एक निश्चित वास्तविकता की दृष्टि से उन्हें देखना चाहिए. आचार्य लिखते हैं:

---

45. महाभारत: 4-33-8.
[In that city Lakshmana of Raghava dynasty has seen buildings that are not single-stories but multi-storied, semblable with Mt. Vindhya and Mt. Meru, and he even saw mountain-rapids with pure water.] - Translation by P. K. Acharya
46. वाल्मीकि रामायण: 2.7, 12.
47. वाल्मीकि रामायण: 2.3, 31.
48. वाल्मीकि रामायण: 2.16, 42.
49. वाल्मीकि रामायण: 4.26, 41.
50. वाल्मीकि रामायण: 2.17, 17.
51. वाल्मीकि रामायण: 4.33, 15.
52. वाल्मीकि रामायण: 6.41, 88.
53. वाल्मीकि रामायण: 2.88, 7.

> 'The words torana, arched gateway; harmya, masonry house; devayatana, temple; sabha, assembly hall; prasada, palace; shikhara, steeple; and vimana, pavilion, in the above extract [from the Ramayana] are noteworthy. None of them can consistently be applied to huts and thatched houses for which the poets invariably use different words. Prurient fancy may extol and exaggerate, but it never suffices to create names of material objects which the fanciful have never seen or heard of; a Ruskin may amuse himself and his readers by building an imaginary palace in the air, but his ideas are always of the earth, earthly, taken from material objects with which he is familiar.'[54]

उपर्युक्त संदर्भों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय से मन्दिर के शिखरों का पर्वतों के साथ अटूट संबंध रहा है, जो शिखर की रचना की एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमिका रचता है. यह अध्ययन भी इस बात की पुष्टि करता है कि रामायण–महाभारत के रचनाकाल से शिखर का प्रयोग होता रहा है. अत: इन ग्रंथों का रचनाकाल जितना प्राचीन है उतना ही शिखरों का मूल प्राचीन है. और निश्चित रूप से वह छठवीं शताब्दी से कई शताब्दी प्राचीन है.

पर्वत गुफा और गर्भगृह की प्रतीकात्मक विभावना

मन्दिर के शिखर का पर्वतीय शिखर के साथ जो संबंध रहा है, उसे विशेष स्पष्ट करने के लिए शिखर के तलस्थान पर स्थित गर्भगृह का विचार करना भी आवश्यक है. क्योंकि जैसे पर्वतीय गुफाओं के ऊपर पर्वतीय शिखर रहता है, उसी प्रकार से मन्दिर में भी गुफा तुल्य गर्भगृह और शिखर का संबंध रहा है.

प्रासाद की बहुपरिमाणीय (Multidimentional) रचना में शिखर के नीचे रचे जाते गर्भगृह का महत्त्व अनन्य है, उसके अनेक कारण दिये जाते हैं. किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यही है कि शिखर के नीचे गर्भगृह में भगवान की मूर्ति स्थापित होती है, फलस्वरूप वह भावनाओं का एक मूर्तिमान केन्द्र बन जाता है.

मन्दिर के गर्भगृह का वास्तव में पर्वतीय गुफा के साथ कैसे तुलना की जा सकती है? इस विषय में विशेष रूप से चर्चा पुन: कभी करेंगे, किन्तु कुछ प्राथमिक विचार यहाँ प्रस्तुत है.

पर्वतीय गुफा अंधकारयुक्त होती है. ठीक उसी तरह, प्रारंभिक मन्दिरों के गर्भगृह बाहरी प्रकाश से रहित थे. यह अभ्यसनीय है कि आठवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक रचे गए अनेक मन्दिरों में गर्भगृह की रचना अंधकारयुक्त दिखाई देती है. पर्वत की गुफा में बाहरी प्रकाश प्रवेश नहीं कर सकता है, उसी प्रकार से गर्भगृह की रचना भी अंधकारयुक्त पर्वतीय गुफा जैसी की जाती थी. इतना ही नहीं, गर्भगृह में मुख्य द्वार के बिना कहीं से भी बाहरी प्रकाश अंदर प्रवेश न कर पाए, उसी तरह गर्भगृह की रचना करने का आदेश भी वास्तु–शिल्पशास्त्रों में दिया गया है.[55]

वास्तुशास्त्रों में गर्भगृह और गुफा–गुहा का संबंध अनायास प्रकट होता है. कुछ उदाहरण देखिए:

बृहत् संहिता[56] मन्दिर–प्रासाद को 'गुहराज' नाम प्रदान करता है. उसके लक्षण बतलाते हुए

54. Acharya, Prasanna Kumar, 1927, *Indian Architecture According to Manasara-Shilpashastra,* The Oxford University Press, London, p. 18.
55. Kramrisch, Stella, 1976, *The Hindu Temple,* Motilal Banarasidas, Delhi, p. 164.
56. बृहत् संहिता: 56/17–19.

ग्रंथकर्ता वर्णन करते हैं –

गुहराजो वृषो हंस: सर्वतोभद्रको घट:।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोण: षोऽशाष्टाश्रयस्तथा॥ 18
गुहराज: षोऽशाकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी॥ 25

गुहराज प्रासाद का आकार गुफा जैसा होता है तथा सोलह हाथ के क्षेत्र में फैला हुआ होता है और वह एक मंजिल का होता है. इन दोनों प्रासादों के ऊपर तीन चंद्रशालाएँ और ढलती हुई (वलभी) छत होती हैं.

'गुहराज' अर्थात् 'गुफाओं का राजा' (King of Caves) में प्रयोजित 'गुह' शब्द 'गर्भगुह' और 'गर्भगृह' शब्द को समझने में उपयोगी होता है. इसके एक विशेष उदाहरण के रूप में मेरु प्रासाद का वर्णन करते हुए वाराहमिहिर लिखते हैं –

'तत्र षडश्रिमेरु: द्वादश भोमौ विचित्रकुहरश्च।'[57]

यहाँ पर षट्कोणीय मेरु प्रासाद में विभिन्न प्रकार की कुहर अर्थात् गुफाओं का निर्देश भी गर्भगृह के साथ ही जुड़ा हुआ है. भविष्यपुराण भी मेरु प्रासाद का वर्णन करते हुए 'कुहर' अर्थात् गुफाओं का उल्लेख करता है.

स्वाभाविक है कि पर्वतगुहा अर्थात् गुफा का मन्दिर के गर्भगृह के साथ संबंध इस तरह से निरूपित किया जा सकता है, परन्तु जहाँ भगवान की मूर्ति स्थापित होती है, उस स्थान का अर्थात् गर्भगृह का 'गर्भ' के साथ क्या संबंध है? 'गर्भ की गुहा' अथवा 'गर्भ का गृह' शब्द प्रयोग किस प्रकार से अर्थपूर्ण बनता है? क्या भगवान की मूर्ति के प्रतीकात्मक अर्थ में गर्भ शब्द प्रयोजित किया गया होगा?

यहाँ पर गर्भ के समानार्थी शब्द के रूप में वैदिक वाङ्मय में आनेवाला 'हिरण्यगर्भ' शब्द का संदर्भ लेना उचित जान पड़ता है. ऋग्वेद[58] के दशवें मंडल में हिरण्यगर्भ का सूक्त पाया जाता है. यहाँ पर सर्व कारणों के कारण, सर्व उत्पत्ति के मूल कारण के रूप में परमात्मा को हिरण्यगर्भ के रूप में सम्बोधित किया गया है.[59]

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

संभवत: ऐसा प्रतीत होता है कि सर्व उत्पत्ति के कारण समान उस 'हिरण्यगर्भ' के अर्थ में 'गर्भ' शब्द के प्रयोजन से ही 'गर्भगृह' शब्द की निर्मिति हुई है. संक्षेप में, जहाँ पर मूर्ति के रूप में हिरण्यगर्भ परमात्मा विराजमान है, वह गृह/गुहा अर्थात् गर्भगृह, गर्भगुहा.

'गर्भ' और शिखर के बीच एक अन्य सांकेतिक संबंध भी है.

गर्भगृह में से उसके ऊपर फैले हुए शिखर के लिए स्थापत्य शास्त्रों ने 'मंजरी' शब्द का प्रयोग

57. बृहत् संहिता: 56/20.
58. ऋग्वेद संहिता: 10.121.
59. 'गर्भ' शब्द का अर्थबोध उत्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ है. अत: 'गर्भगृह' शब्द भी उत्पत्ति का विषय सूचित करता है. यहाँ पर निर्देश करना चाहिए कि भगवान श्री स्वामिनारायण द्वारा प्रबोधित वैदिक अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन में अक्षरब्रह्म को ही सर्व उत्पत्ति का कारण मानकर, उसके भी कारण के रूप में परमात्मा को माना गया है. अर्थात् हिरण्यगर्भ सर्व उत्पत्ति का कारण है.

किया है.[60] मंजरी अर्थात् अंकुरित होना. (A blossom or a shoot or a sprout) जैसे गर्भबीज में से अंकुर निकलता है, वैसे ही 'गर्भ'गृह में से मंजरी अर्थात् शिखर अंकुरित होता है. मंजरी अर्थात् शिखर और गर्भगृह के इस संबंध में प्राकृतिक प्रतीकात्मक (Natural symbolism) बोध स्पष्ट हो जाता है.

संक्षेप में, मन्दिर एवं उसके शिखरों के साथ पर्वतों की विभावना युगों से जुड़ी हुई है. पर्वत का शिखर और मन्दिर का शिखर, पर्वत की गुफा और मन्दिर का गर्भगृह, एक-दूसरे से अर्थपूर्ण संबंध रखते हैं.

एक प्रासाद-पुरुष एवं शिखर का चिंतन

प्राचीन भारतीय शिल्प-स्थापत्य शास्त्रों एवं दर्शन-शास्त्रों के बीच एक अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है. क्योंकि दार्शनिक आधार पर ही मन्दिर-प्रासाद की नींव रखी गई है. यही एक मुख्य कारण है कि विश्व की धार्मिक इमारतों की परम्परा में मन्दिर का प्रासाद अपना एक अनूठा स्थान आरक्षित रखता है. सामान्यत: विश्व की अन्य परम्पराओं में धार्मिक इमारतों की कृति-आकृति और दार्शनिकता के बीच कोई विलक्षण सम्बन्ध नहीं दिखाई देता है. जबकि हिन्दू वास्तुशास्त्रों में न केवल कला--स्थापत्य की दृष्टि से, बल्कि दार्शनिक दृष्टि से मन्दिर की आकृति का चिंतन किया गया है. मन्दिर का वह दार्शनिक पक्ष भले ही स्थापत्य शास्त्रों एवं पुराणों के द्वारा प्रस्तुत किया गया हो, लेकिन उसका मूलाधार तो प्रस्थानत्रयी (उपनिषदों, भगवद्गीता एवं ब्रह्मसूत्र) में है. उल्लेखनीय है कि इस दार्शनिक चिंतन के द्वारा मन्दिराकृति का दिव्यता के साथ जो अनुसंधान किया गया है और जो एक आध्यात्मिक संदेश दिया गया है, वह प्रत्येक यात्री के लिए साधना का एक महत्त्वपूर्ण विषय बन सकता है.

मन्दिर-स्थापत्य में प्रासाद की समग्र आकृति का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व उसका शिखर करता है. इसीलिए शिखर के बिना प्रासाद अपूर्ण ही है, ऐसा कहकर वास्तुशास्त्रों ने उसे विशेष महत्त्व प्रदान किया है.[61] क्योंकि हिन्दू शिल्पशास्त्रों में दार्शनिक दृष्टि से शिखर को उस 'पुरुष' का शीर्ष कहा गया है[62] जो वेदांत परंपरा में युगों से चर्चा-चिंतन का विषय रहा है. वेदांत शास्त्रों में भिन्न-भिन्न व्याख्याओं में वर्णित वह 'पुरुष' दार्शनिक दृष्टिकोण से एक अभ्यसनीय विषय है. अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन में मन्दिर-प्रासाद का उस पुरुष के साथ क्या संबंध है? भगवान श्री स्वामिनारायण के अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन में उस 'पुरुष' का क्या स्थान है? शिखर एवं उस 'पुरुष'शरीर का क्या संबंध है? इन प्रश्नों के समाधान के लिए, शिखर विषयक इस निबंध में इतिहास-दर्शक विमर्श के बाद द्वितीय लेखांक में उस दार्शनिक पक्ष पर भी एक दृष्टि करेंगे.

60. देखिए: 'प्रासादमंजरी', संपादक: प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा.
61. Kramrisch, Stella, 1976, *The Hindu Temple,* Motilal Banarasidas, Delhi, see Part vi.
62. वचनामृत.

WORKS CITED

Acharya, Prasanna Kumar, 1927, *Indian Architecture According to Manasara-Shilpashastra,* The Oxford University Press, London.

Acharya, Prasanna Kumar, 1927, *An Encyclopaedia of Hindu Architecture,* The Oxford University Press, London.

Banerji, R.D., 1920, *Progress Report of the Archaeological Survey of India,* Western Circle.

Banerji, R.D., 1933, *The Age of the Imperial Guptas,* The Benares Hindu University, Calcutta.

Brown, Percy, 1942, *Indian Architecture: Buddhists and Hindu Period,* Taraporevala and Sons, Bombay.

Burgess, James, *Epigraphia Indica, 1892,* Archaeological Survey of India, Vol. I, Superintendent Government Printing, Calcutta.

Burgess, James, *Epigraphia Indica, 1982,* Archaeological Survey of India, Vol. XII. Superintendent Government Printing, Calcutta.

Burgess, James and Cousens, Henry, 1903, *Architectural Antiquities of North Gujarat,* Routledge and Kegan Paul, London.

Coomaraswamy, Ananda K., 1927, *History of Indian and Indonesian Art,* Edward Goldston, London.

Cunningham, Alexander, 1871-1887, *Archaeological Survey Reports,* Vol. X. The Government Central Press, Simla.

Kramrisch, Stella, 1976, *The Hindu Temple,* Motilal Banarasidas, Delhi.

Marshall, John, *Archaeological Survey of India: Annual Reports: 1905-6,* Superintendent Government Printing, Calcutta.

Vatsyayan, Kapila, 1997, *The Square and the Circle of the Indian Arts,* Abhinav Publications, New Delhi.

Volwahsen, Andreas, 1969, *Living Architecture, Indian,* Oxford & IBH Publishing Company, Delhi.

अग्निपुराण, संस्कृति संस्थान, वेदनगर बरेली, उत्तरप्रदेश.

अग्रवाल, वासुदेवशरण, 1964, *प्राचीन भारतीय लोकधर्म,* ज्ञानोदय ट्रस्ट, वाराणसी

अथर्ववेद, 2009, युगनिर्माण विस्तार ट्रस्ट, गायत्री, तपोभूमि मथूरा, उत्तरप्रदेश.

भुवनदेव, 1953, अपराजितपृच्छा, प्राच्यविद्यामन्दिर, बड़ौदा

आचार्य वराहमिहिर, बृहत् संहिता, 1984, प्रवीण पुस्तक भंडार, राजकोट.

ऋग्वेद, 2009, युगनिर्माण विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथूरा, उत्तरप्रदेश.

कामिकागम, 1975, मद्रास

भगवान श्री स्वामिनारायण, वेदरहस्य(वेदरस), 1979, बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था, अहमदाबाद.

भगवान श्री स्वामिनारायण, वचनामृत, संपादक: मुक्तानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, गोपालानंद स्वामी, शुकानंद स्वामी; स्वामिनारायण अक्षरपीठ, 2017.

मत्स्यपुराण, संस्कृति संस्थान, वेदनगर बरेली, उत्तरप्रदेश.

महाभारत, 2001, गीताप्रेस, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश.

वायुपुराण, 1968, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, गुजरात.
वाल्मीकि रामायण, 1936, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, गुजरात.
सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ., प्रासादमंजरी, अहमदाबाद.
अन्य:
आश्वलायन गृहसूत्र
शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्वतर उपनिषद्
विरोचनकृत लक्षणसमुच्चय
सुप्रभेदागम
ईशानशिवगुरुदेवपद्धति